अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद् की ओर से

णमोकार मंत्र

और

आत्म विकास की सीढ़ियां

लेखक
श्री प० सरनाराम जैन
देहरादून

प्रकाशक —
बाबूलाल जैन जमादार
संयुक्त मंत्री अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद्
बड़ौत (मेरठ)

प्रथम बार ११०० | मार्च १९६८ ई० | पोस्टेज खर्च ५ पैसे

अपनी बात—

अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद् का ३७ वाँ पुष्प आपकी सेवा में प्रस्तुत करते हुए परम हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। णमोकार मंत्र का अर्थ सर्व साधारण भली भांति जान सके इसकी मांग बराबर मुझ से की जाती थी, इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर यह पुस्तक तैयार की गई है। इससे पाठक कितना लाभ उठाते हैं यह तो समय ही बतावेगा। पर, मैं यह अवश्य जानता हूँ कि जैन शिक्षा संस्थाओं के छात्रों को अधिक लाभ इस पुस्तक से होगा।

आत्म विकास किस प्रकार होता है और वह कौन-२ सी सीढ़ियाँ हैं जिन से यह आत्मा परमात्मा बनकर अनंत सुख का स्वामी होता है वह इस पुस्तक में पाठकों को बराबर मिलेगा। यदि शांत चित्त से व विवेक से इस का अध्ययन किया गया तो सहज ही हम अपनी भूल इसके स्वाध्याय से मिटा सकते हैं।

मैं, अपने परम स्नेही विद्वान श्री प० सरनाराम जी जैन का आभारी हूँ जिन्होंने यह पुस्तक तैयार करके दी है। दि० जैन शास्त्रि परिषद् अपने प्रकाशनों में अब नया मोड़ लेने जा रही है। उसके लिये विचार विमर्श हो रहा है। उसके निर्णय के अनुसार उच्च कोटि के ग्रंथ समाज की सेवा में पहुँच सकेंगे। जिससे भावी पीढ़ी अपने जीवन को सम्भाल सके और वर्तमान पीढ़ी के सामने जो द्वन्द है वह उसे भली भांति समझकर सुधार सके।

आशा है दानी बन्धु शास्त्रि परिषद् को दान देकर प्रकाशन के कार्य को आगे बढ़ावेंगे।

बड़ौत (मेरठ)
दिनांक १-२-६८ ई०

बाबूलाल जैन जमादार
सं० मंत्री अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद्

णमोकार मन्त्र
और
आत्मा के विकाश की सीढ़िया

ऐसा कुछ वस्तु का स्वभाव है कि जीव का स्वत अनादि से निगोद में वास है। कुछ जीव तो अनन्त काल से वहीं ही हैं और बहुत काल तक वहां ही पड़े रहेंगे। उनके दुर्भाग्य की क्या चर्चा करें। वे तो हैं संसार दुःख भोगने के लिये। उनको आत्म विकाश का कोई अवसर नहीं। उनमें से छः महीने और आठ समय में स्वत काल के परिवर्तन के नियमानुसार ६०८ जीव बाहर निकलते हैं जिनकी व्यवहार संज्ञा बन जाती है। उनमें भी फिर बहुतों का समय तो एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय असंज्ञी पर्यायों में बीतता है। यहाँ तक तो भाग्य की मुख्यता है, और जीव मन की हीनता के कारण धर्म संबंधी कोई आत्म कल्याण नहीं कर सकता। फिर कोई जीव यदि मन वाला हुआ और सांसारिक विषय भोग-कर्म चेतना और कर्म फल चेतना में ही जीवन खो दिया तो संज्ञीपना पाया या नहीं पाया कोई लाभ नहीं हुआ। उनमें कोई विरला जीव जो भव्य पंचेन्द्रिय, पर्याप्तक होता है तथा

कालादि लब्धियों को प्राप्त होता है वह महा भाग्यशाली, प्रकृतियों के उपशम क्षय अथवा क्षयोपशम से सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। यह आत्मा के विकास की पहली सीढ़ी है। इससे उसका प्राय दुर्गतियों का भ्रमण मिट जाता है, और जीव स्वरूप में सचेत होता है। फिर उन असंख्यात जीवों में से कोई एक विरला जीव श्रावक का धर्म ग्रहण कर पांचवें गुणस्थान की विरताविरत दशा को ग्रहण करता है। इसको भी पारकर कोई महाभाग्यशाली मुनिधर्म को अंगीकार करता है। जहाँ उसका छठे सातवें गुणस्थान में परिणमन होता रहता है और इसकी साधु संज्ञा हो जाती है। और इसका दर्जा पंचपरमेष्ठी में सम्मिलित हो जाता है। महापुरुष सद्गुरु, या सन्त जैसे पवित्र शब्द का पात्र बन जाता है। ये आत्मविकास की एक उत्तम पहली दर्जा दशा है। जिस को सज्जन पुरुष "णमो लोए सव्वसाहूणं' कहकर नित्य नमस्कार किया करते हैं।

*जैन धर्म में एक णमोकार मन्त्र है जो अपराजित सर्वोत्तम महामन्त्र है। भगवती आराधना के संस्कृत टीकाकार आचार्य देवने इसे गणधर कृत लिखा है, और यह भी लिखा है कि द्वादशांग का प्रारंभ इसी मंत्र से होता है। अजैन को जैन बनाने के लिये इसी मन्त्र द्वारा शुद्धि की जाती है। जैन बालक को जैन धर्म की पढ़ाई प्रारंभ करने से पहले यही मन्त्र सिखाया जाता है। युवा लोग प्रतिदिन सामायिक में इस मन्त्र की माला फेरते हैं। पूजा में, पाठ में प्रायश्चित्त में, यहां तक कि प्रत्येक शुभ क्रिया का प्रारम्भ ही इसी मन्त्र से होता है। इसके सुनने मात्र से कुत्ता भी मर कर देव हो गया था। प्रौढ़ ज्ञानी जन नित्य इसके अर्थ पर (वाच्य पर या अभिधेय पर) ध्यान

में यह साधारण अवस्था मे विचार किया करते हैं । क्या आपने भी कभी विचारा कि आखिर इसकी इतनी महत्ता क्यों है ? इसका अर्थ क्या है ? इसका वाच्य क्या है ? आइये, आज यही बात हम आप को समझाना चाहते हैं।

इसकी इतनी महत्ता इस कारण है कि ये आत्म विकास के सूचक दर्शाए हैं । जो दशाए नियम से मुक्ति को देती है या मुक्तिरूप है । इनमे "णमो लोए सव्वसाहूणं" यह आत्मा की पहली उन्नत दशा है, जिसका ऊपर संकेत किया। यहा आत्मामें क्या अलौकिकता आ जाती है अथवा यह आत्मा किस स्वरूप में परिणत होता है इसका सर्व प्रथम चित्रण श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने इन शब्दों में खींचा है —

'णमो लोए सव्वसाहूणं' का वाच्य अर्थ

वावार विप्पमुक्का चउव्विहाराहणासयारत्ता
णिग्गंथा णिम्मोहा साहू एदेरिसा होंति ७५

—नियमसार,

व्यापार से विमुक्त (समस्त व्यापार रहित) चार प्रकार की आराधनाओं में सदा रत, निर्ग्रन्थ और निर्मोह ऐसे साधु होते हैं । उनके लिये नमस्कार हो । भावार्थ इस गाथा में बताया है कि सबसे पहली आत्म विकास की गृद्धी तो इस आत्मा में यह उत्पन्न हो जाती है कि वह समस्त सांसारिक कार्यों से मुक्त हो जाता है । अर्थात् अशुभ भाव का लेश नहीं रहता अथवा आत्म अकल्याण जैसी यहा कोई बात नहीं है । इस पर झट यह प्रश्न होता है कि फिर आखिर इसका समय (जीवन) कैसे व्यतीत होता ? इसके लिये उत्तर देते हैं कि यह

प्रकार की आराधनाओं में सदा रत रहता है अर्थात इसका काय है दर्शन, ज्ञान चारित्र और तप आराधनाओं का आराध करना। उन्हें नित्य पालना, लगे हुए दोषों को प्रायश्चित्त द्वारा दूर करना और इस प्रकार वहा तक उसकी उन्नति करना जहा तक कि व पूर्ण दशा को प्राप्त न हो जाए।

फिर दूसरा इसका काम है सम्यग्ज्ञान की उपासना छह द्रव्य, पचास्तिकाय, ७ तत्त्व, ६ पदार्थ और व्यवहार निश्चय मोक्षमार्ग का स्वरूप यथावत् पचास्तिकाय आदि आगम के आधारानुसार जानना। फिर उसमे विशेषतया स्व पर का भेद जो उसने सम्यक्त्व प्राप्ति मे किया था। उसका प्रमाण नय आदि द्वारा अधिक प्रौढ अभ्यास करना और करते ही रहना। इस आराधना का सेवन केवलज्ञान की उत्पत्ति तक निरंतर किया जाता है। जब छट गुण स्थान में आता है तो श्रुत के आधार से इसका विचार करता है और सातवं आदि से बारहवें गुणस्थान तक आत्मज्ञान के रूप में इस आराधना की उपासना की जाती है।

तेरहवें गुणस्थान में केवल ज्ञान होने पर यह आराधना पूर्ण हो जाती है। फिर तीसरी चारित्र आराधना छठ सात वें गुणस्थानों मे तो इसे इन्द्रियसंयम और प्राण संयम के रूप में साधता है। ५ महाव्रत ५ समिति, ३ गुप्तियों को पालता है और अशुभभाव प्रवृत्ति नष्ट नहीं करता है। चौबिसो घण्टे निर्दोष शुभ प्रवृत्ति करता है। यह प्रवृत्ति रत्नत्रय सहित होती है फिर अपनी आत्म शुद्धि का बल बढ़ाने के लिये आत्मस्थिरता का प्रयास करता है जो दशा आठवें से बारहवें तक की है। तेरहवें गुणस्थान का यथाख्यात चारित्र (निश्चय चारित्र) प्राप्त होने पर यह आराधना भी प्राप्त हो जाती है और किसी

अपेक्षा चौदहवें गुणस्थान तक चलती है।

यह साधु ६ बाह्य और ६ आभ्यन्तर इन १२ तपों की साधना करता है। इसकी साधना छठे से प्रारम्भ होकर बारहवें तक चलती। इस प्रकार ये मुनि क्या करता है? कैसे इनका जीवन व्यतीत होता है? उसका उत्तर कुन्द कुन्द महाराज ने किस सुन्दर शब्दों में दिया कि ये सदा चार प्रकार की आराधनाओं में रत रहता है। इस पर किसी को यदि यह शंका हो कि क्या ये आराधनायें गृहस्थ से भी बन जाती है। वह भी तो आत्मा है! तो अगले पद में उत्तर देते हैं कि नहीं। यह आत्मा तो जरूर है ज्ञानी भी है पर उसकी साधना में परिग्रह ने रोड़ा अटकाया हुआ है। परिग्रह के उपार्जन रक्षण, व्यय आदि में जो उसका उपयोग लगता है, इससे इन आराधनाओं का साधन नहीं बनता। इनकी प्राप्ति के लिये परिग्रह का सर्वथा त्याग करना पड़ता है। और इतना त्याग करना पड़ता है कि शरीर का भी सर्वथा निष्परिग्रह करके दिगम्बर मुद्रा धारण करनी पड़ती है। उसकी सूचना के लिये निर्ग्रन्थ पद दिया है। इस पर फिर भी कोई कहता है कि इन के शरीर परिग्रह तो रहता ही है। संयम के साधन पीछी कमण्डल, ज्ञानके साधन पुस्तक आदि तो रहते ही हैं? तो उत्तर देते हैं कि इनके अन्तरंग परिग्रह का भी त्याग होता है इसलिये वे इन पदार्थों के प्रति निर्मोह होते हैं। उपकरण परिग्रह नहीं हैं किन्तु मूर्च्छा परिग्रह है। और वह मूर्छा इनके है नहीं। ऐसा निर्मोही वह साधु हो जाते हैं। आत्मविकास की इस प्रथम सीढ़ी को जो प्राप्त कर लेता है उसको साधु कहते हैं। उसके लिये हमारा नमस्कार हो।

इनके बाद इस पृथ्वीतल पर एक और महान् आत्मा आया जिसका नाम श्री नेमीचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती था। इन्होंने पंचम काल में श्रुतकेवली जैसा काम किया है। सारे अध्यात्म और द्रव्यानुयोग को द्रव्यसंग्रह की ५८ गाथा में बांधना इन्हीं का काम था। इन्होंने इसी साधु परमेष्ठी के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए उपरोक्त आ० कुन्दकुन्द के भाव को निम्न शब्दों में गूंथा है।

दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं

साधयदि णिच्चसुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स

द्रव्यसंग्रह

जो चारित्र सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से पूर्ण [युक्त] होता है, जो चारित्र मोक्षमार्ग स्वरूप होता है, जो चारित्र सदा शुद्ध होता है ऐसे चारित्र को जो साधता है वह मुनि साधु परमेष्ठी है। उसको मेरा नमस्कार हो।

चारित्राराधना में तो चारों आराधनाओं का नियम से अंतर्भाव रहता ही है किन्तु और आराधनाओं में अन्य का समावेश हो या न हो ऐसा भगवती आराधना में सयुक्तिक सिद्ध किया है। इसलिये आचार्य देव ने चार आराधना न लिखकर केवल चारित्र आराधना को सिद्ध करने वाला लिखा। यह जैन धर्म की सामान्य या संक्षिप्त शैली है। यह आचार्य सूत्रकार थे और बहुत ही संक्षिप्त रचियाते थे। इस पर कोई द्रव्यलिंगी मुनि की आराधना को चारित्र आराधना न समझ ले इसके लिये सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान से युक्त कहा।

श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने जो सब व्यापारों से मुक्त

निस्पृय तथा निर्मोह कहा था उसके स्थान पर इन्होंने नास्ति से सब दोषों की रहितता को सिद्ध करने के लिये अथवा अशुभ भाव का अभाव दिखाने के लिये सब का समष्टात्मक एक नित्य शुद्ध चारित्र का विशेषण दे दिया। जिस से लौकिक सब दोषों का भी अभाव सिद्ध हो गया और चारों आराधनाओं का अतिचार रहित शुद्ध पालने का भी संकेत हो गया और भाव भी ठीक वही गुथ गया जो कुन्दकुन्द आचार्य ने गूथा था और अन्त में 'तस्स णमो' पद डाल कर णमो लोए सव्वसाहूणं पद का अक्षरश कथ कर दिया।

आचार्य तो ये दोनों सूत्रकार थे पर नेमिचन्द जी अत्यन्त संक्षिप्त रुचिप्रिय थे। इन के सूत्रों को ज्ञानी पण्डित ही खोल सकते हैं और श्री कुन्दकुन्द आचार्य इनकी अपेक्षा कुछ विस्तार रुचिवाले थे ये बातें इन दोनों के सब सूत्रों में इसी प्रकार पाई जाती हैं। अभिधेय दोनों का सर्वत्र सब सूत्रों में एक ही है।

एक और महापुरुष इस पृथ्वी पर आया जिस का नाम था स्वामी समन्तभद्र आचार्य जिसने दिग्विजय करके जैन धर्म को जीवित किया, ये भी सूत्रकार थे। इन्होंने साधु के स्वरूप को एक कारिका में अस्ति नास्ति के कथन द्वारा अत्यन्त सरलता से संस्कृत भाषा में वर्णन किया। अस्ति से लिखा कि जो ज्ञान ध्यान और तप में लीन हो इस में साधु के सब गुणों का समावेश किया। नास्ति से ही दोषों का समष्टात्मक अभाव दिखाने के लिये लिखा कि जो विषयों की आशा, आरम्भ और परिग्रह से रहित हो तीन से सहित हो और तीन से रहित हो वह तपस्वी गुरु अथवा साधु परमेष्ठी होता है। इस के लिये नमस्कार

हो। वह कारिका इस प्रकार से —

साधु परमेष्ठी का स्वरूप

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥१०॥

जो विषयों की आशा की आधीनता से रहित है (इन्द्रियों के विषयों की वाञ्छा के वश नहीं है), निरारम्भ है (कृषि वाणिज्यादि रूप सावद्य कर्म व व्यापार में प्रवृत्त नहीं होता) अपरिग्रह है (धन धान्यादि बाह्य परिग्रह नहीं रखता तथा न मिथ्यात्व राग द्वेष मोह काम क्रोधादि रूप अन्तरंग परिग्रह से अभिभूत होता), ज्ञान ध्यान और तप में लीन रहता है (सम्यग्ज्ञान की आराधना, प्रशस्त ध्यान का साधन और अनशनादि समीचीन तपों का अनुष्ठान करता है) वह तपस्वी (साधु) प्रशंसनीय होता है।

फिर एक और महापुरुष का अवतार हुआ जिस का नाम था श्री अमितगति आचार्य। ये संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे जिन का ३२ सूत्रों का सामायिक पाठ घर घर पढ़ा जाता है। इन्होंने एक महान और सुन्दर रचना की जिस का नाम है अमितगति श्रावकाचार। उस में आप साधु परमेष्ठी के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं

चैतन्यगानलस्ताप्र संतापितजगत्त्रय ।
विध्यापित शमाम्भोभि पापपंकापसारिभि
दिधक्षवो भवारण्य ये कुर्वन्ति तपोऽनघम् ।
निराकृताखिलस्पृहा निस्पृहा स्वतनावपि ॥

निधानामव रक्षन्ति ये रत्नत्रयमादृता ।
ते सद्भिराराध्यन्ते साधवो भव्यबान्धवा ॥

सताप को प्राप्त किया है तीन लोक जिसने ऐसी काम रूप तीव्र अग्नि को जिन्होंने पाप रूप कीच को दूर करनेवाले शान्तभाव रूप जल के द्वारा बुझाया है (अर्थात् जो पूर्ण ब्रह्मचर्य महाव्रत के धारी हैं) और साधु संसार रूप वन को जलाने को बालक से पापरहित तप को करते हैं । और कैसे हैं वे साधु ? दूर किया है समस्त अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह जिन्होंने और जो अपने शरीर में भी वाञ्छा रहित हैं । दर्शन ज्ञान चारित्ररूप रत्नत्रय की रक्षा करते हैं । भव्य जीवों के बान्धव साधु भगवान सत्पुरुषों द्वारा आराधित हैं । भाण्डार लोक में जिस प्रकार आदर सहित भंडार के रक्षा की जाती है, उसी प्रकार वे साधु हैं।

णमो उवज्झायाण का वाच्यार्थ

उपाध्याय परमेष्ठी को हमारा नमस्कार हो । वे उपाध्याय परमेष्ठी साधु ही होते हैं । इसलिये जितना स्वरूप साधु परमेष्ठी का पहले कहा जा चुका है वह इन में पूर्ण रूप से रहता है । उसके अतिरिक्त जो विशेषता होती है उसको श्री कुन्दकुन्द आचार्य निम्न शब्दों में कहते हैं—

रयणत्तयसंजुत्ता जिणकहियपयत्थदेसयासूरा। णिक्कंखभाव सहिया उवज्झाया एरिसा होंति ॥ ७४ ॥ नियमसार ।

(१) वे उपाध्याय रत्नत्रय से संयुक्त होते हैं (२) जिन कथित पदार्थों के उपदेशक होते हैं, (३) निःकांक्ष भाव से सहित होते हैं, (४) शूरवीर होते हैं ऐसे उपाध्याय लिये हमारा नमस्कार हो ।

भावार्थ—ये उपाध्याय रत्नत्रय से संयुक्त होते हैं। इस कहने का आशय यह है कि जो साधु का धर्म दर्शन ज्ञान चारित्र पहले बतलाया जा चुका है उससे ये संयुक्त होते हैं। फिर साधुओं से इनमें जो विशेषता होती है सो बताते हैं। साधु तो केवल चारित्र (मोक्षमार्ग) के साधक होते हैं, दूसरों को उपदेश करने का इनका अधिकार नहीं है। दूसरे कोई मुनि अनपढ़ भी होते हैं, कोई कम पढ़े भी रहते हैं ज्ञान की कमी से उपदेश में अप्रमाणिकता आने का डर भी रहता है। उपाध्याय ज्ञान के प्रौढ़ अनुभवी होते हैं अतः उपदेश देना पढ़ना पाठन इनका काम है। इसी विशेषता के कारण इन का यह पद है। जिन कथित पदार्थों का उपदेश करते हैं। छः द्रव्य, पंचास्तिकाय ७ तत्त्व ९ पदार्थ और व्यवहार निश्चय मोक्षमार्ग ये संक्षेप से जिन कथित पदार्थ हैं। इनका जैसा स्वरूप दिव्यध्वनि में कहा गया है तदनुसार उपदेश करते हैं। अपनी बुद्धि से कल्पित उपदेश नहीं करते। इन को ज्ञान का तप का या त्याग का मद नहीं होता। उपदेश द्वारा श्रोताओं से ये कोई भोजन वस्त्र धन आदि की या वैयावृत्य आदि की किसी भी कांक्षा-इच्छा वाञ्छा नहीं रखते हैं अर्थात् निर्पेक्ष भाव से उपदेश देते हैं। केवल धर्मबुद्धि से या धर्म की प्रभावना के लिये ये उपदेश देते हैं इन में साधुओं की अपेक्षा यह ही विशेषता होती है जिससे इन में उपाध्याय की पर्याय प्रगट होती है।

क्या यही उपाध्याय परमेष्ठी का गुण है या कुछ और भी? सो उत्तर में कहते हैं कि ये सूर होते हैं—

शूरवीर होते हैं, इस का सार है कि जगत के षट दर्शनों तथा ३६३ मतों को एकान्त मान्यता का खण्डन कर अनेकान्त वस्तु का वास्तविक समर्थन कर वादियों के मन को चकनाचूर करनेमें भी समर्थ होते हैं। वाद-विवाद के विजयी होते हैं।

णमो उवज्झायाणं का अर्थ

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवदेसणेणिरदो
सो उवज्झाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो
तस्स ॥५३॥ द्रव्यसंग्रह।

जो रत्नत्रय से सहित है निरन्तर धर्म का उपदेश देने में तत्पर है तथा मुनियों में प्रधान है वह आत्मा उपाध्याय है। उसके लिये नमस्कार हो।

इसके बाद अमितगति आचार्य ने भी इस मन्त्र पद पर इस प्रकार प्रकाश डाला है—

णमो उवज्झायाणं का वाच्य अर्थ

उन्नतेभ्यः ससत्वेभ्यो येभ्यो दलितकल्मषा।
जायन्ते पावना विद्या पर्वतेभ्य इवाऽऽपगा
चरन्ति पंचधाचारं भवारण्यदवानलं।
द्वादशांगश्रुतस्कन्धं पाठयन्ति पठन्ति ये २९
यथा यत्राह्रदे स्नाता न सन्ति मलिना जना
तेऽर्च्यन्ते न कथं धीरैरुपाध्याया जिनेश्वरः ३०

अमितगति श्रावकाचार

जैसे पर्वत से नदी उपजे हैं तैसे उपाध्याय से पाप नाशक पवित्र विद्या उपजे हैं। वे उपाध्याय बड़े हैं पराक्रम सहित हैं, संसार वन को जलाने के लिये पंचाचार रूप दावानल को आचरते हैं, बारह अंग रूप श्रुत स्कंध को

पदार्थ और पढे हैं। जिन के वचन रूप सरोवर में स्नान करने से मनुष्य मलिन नहीं होय है। उन पाप रहित उपाध्याय को चतुर पुरुष क्यों न पूजे ? पूजे ही है।

उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप समाप्त हुवा। अब आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप कहा जाता है

आचार्य परमेष्ठी को हमारा नमस्कार हो। आचार्य परमेष्ठी भी साधु तो होते ही हैं अत उन में पूर्ववर्णित साधुओं के सब गुण तो पाये ही जाते हैं। इस के अतिरिक्त क्या विशेषता है, इसका वर्णन श्री कुन्दकुन्द आचार्य इन शब्दों में करते हैं

णमो आइरीयाणं का अर्थ
पंचाचारसमग्गा पंचिंदियदंतिदप्पणिद्दलणा
धीरा गुणगंभीरा आयरिया एरिसा होंति

(१) आचार्य परमेष्ठी पांच आचारों से परिपूर्ण होते हैं (२) पंचेन्द्रियें रूपी हाथी के मद का दलन करनेवाले होते हैं। (३) धीर होते हैं और (४) गुण गंभीर होते हैं ऐसे आचार्य होते हैं—उन के लिये नमस्कार हो।

भावार्थ—साधुओं का कर्तव्य दर्शनाचार ज्ञानाचार चरित्राचार तपाचार और वीर्याचार का पालन है। इन आचारों को साधु और उपाध्याय भी पालते हैं किंतु आचार्य इन के पालन में इतने दृढ और प्रौढ हो जाते हैं कि उन से इन में किसी प्रकार के अतिचार (दोष) नहीं लग पाते और न उनके पालन में कोई कमी रहती है। अत ये पंचाचार आचार्य परमेष्ठी के गुणों में कहे गये हैं।

दर्शन और दर्शनाचार में क्या अन्तर है ? सम्यग्दर्शन की प्राप्ति को दर्शन कहते हैं और उसे ४४ दोषों (८ मद,

३ मूढ़ता, ६ अनायतन, ७ मद, ८ शङ्कादि दोष, ७ व्यसन ५ अतीचार) से रहित पालना तथा निशंकितत्व आदि आठ अंग और प्रशम आदि आठ गुणों से परिपूर्ण पालना दर्शनाचार है। दर्शन का आचार या दर्शन सम्बन्धी आचार दर्शनाचार है।

सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति ज्ञान है। उसे शब्दाचार, अर्थाचार उभयाचार, कालाचार, विनयाचार, अनिह्नवाचार और बहुमानाचार, इन ज्ञान के ८ गुणों सहित पालना तथा प्रमाण नयों द्वारा सत् संख्या आदि और निर्देश स्वामित्व आदि अनुयोगों द्वारा अस्ति आदि सप्त भंगी द्वारा चारों निक्षेपों पर बड़ी सावधानी से ठीक ठीक प्रयोग करना ये सब ज्ञान सम्बन्धी आचार होने से ज्ञानाचार है।

इन्द्रिय संयम तथा प्राणी संयम के पालन को चारित्र कहते हैं। उस ५ महाव्रत, ५ समिति, ३ गुप्ति, द्वारा निर्दोष भावना चारित्र सम्बन्धी आचार होने से चारित्राचार है। ६ बाह्य और ६ अभ्यन्तर तपों का पालना निर्दोष तपाचार है और इन चारों आचारों की उत्सर्ग और अपवाद की मैत्री पूर्वक प्रवचनसार में बताई हुई विधि अनुसार शरीर और आत्मशक्ति के विवेक पूर्वक रक्षा करना अपनी शक्ति का न छिपाना वीर्याचार है। जीवों ने अनादि से इन का कभी अभ्यास नहीं किया है। साधु पद में इनका अभ्यास प्रारंभ करता है। बहुत समय तक उसमें अतिचार लगते रहते हैं जो निन्दा गर्हा तथा प्रायश्चित्त द्वारा संशोधन करते रहते हैं फिर कुछ समय बाद साधु इन में प्रौढ़ और निपुण हो जाता है उसमें उसके आचार्य पर्याय की उत्पत्ति कही जाती है।

(२) इन्द्रियां पांच हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण चक्षु और श्रोत्र। इन के विषय हैं ८ स्पर्श, ५ रस २ गंध ५ वर्ण और ७ स्वर। इन में प्रत्येक के दो दो भेद हैं। इष्ट अच्छे लगने वाले तथा अनिष्ट बुरे लगने वाले। अनादि काल से ये जीव इन्द्रिय विषयों की वाञ्छा से पराभूत हुआ इष्ट में राग और अनिष्ट में द्वेष करता है और इस मद में (नशे में) चूर हुआ संसार में भ्रमण करता है। मुनि अवस्था में जीव इन्हें जानना प्रारंभ करता है और बहुत समय तक अभ्यास के बाद ५ इन्द्रिय रूपी हाथी के मद नष्ट करने में समर्थ हो जाता है। तब उसको आचार्य पर्याय की अनुभूति होती है। इस लिये पांच इन्द्रिय विजयी भी आचार्य परमेष्ठी का गुण है।

(३) धीर होते हैं। मुनियों पर बारह परीषह आती हैं। तथा अनेक प्रकार के देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और अचेतन कृत उपसर्ग भी आते हैं। मुनि इन को यथार्थ रूप जीतने का पुरुषार्थ भी करते हैं। जीतते जीतते अब वे इतने धीरवीर हो जाते हैं कि जिस तरह सुमेरु को वायु नहीं चलायमान कर सकती उसी प्रकार भारी से भारी परिषह और उपसर्ग भी इन्हें मोक्षमार्ग से नहीं डिगा सकते। तब इन की आत्मा में आचार्य पर्याय प्रकट हो जाती है। इसलिये धीर भी आचार्य का एक गुण है।

(४) गुणगंभीर होते हैं। ये अनेक जीवों को दीक्षा देते हैं शिक्षा देते हैं उन के लगे हुए दोषों को प्रायश्चित्त विधि द्वारा शुद्ध करते हैं। पौरुषेय दोषों को और उन के दूर करने कराने की विधि में ये निपुण होते हैं। संघ में इनका व्यवहार इतना कुशल दृष्ट सिद्ध होता है कि प्रत्येक

मुमुक्षु जीव इन की शरण में रहकर धर्म साधना करने को अपना सौभाग्य मानता है। जीवों के दोषों को गुप्त रखते हैं। हर प्रकार से जैन धर्म की रक्षा करना जानते हैं। द्रव्य क्षेत्र काल भाव और लोकव्यवहार के ज्ञाता होते हैं और तदनुसार संघ का विहार तथा ठहराव करने का आदेश देते हैं। हम यहां तक कहें एक संघ पति में जितने गुण होने चाहिये वे सब स्वतः सिद्ध स्वभाव से इनमें रहते ही हैं। ऐसा कुछ आचार्य पर्याय का भावना भाव है। अतः गुणगंभीर भी आचार्य का एक विशेषण है।

उपरोक्त सब गुण समूह का अविनाभाव है और इन गुणों की आत्मा ही आचार्य परमेष्ठी है ऐसा भी कुन्दकुन्द आचार्य देव का भाव है। इन के बाद आचार्य नेमिचन्द इस प्रकार लिखते हैं—

दंसण णाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे
अप्पं परं च जुं जइ सो आयरि ओ मुणी झेओ

(१) दर्शनाचार और(२)ज्ञानाचार की प्रधानता सहित (३) वीर्याचार, (४) चारित्राचार और (५) श्रेष्ठ तपाचार इन पांचों आचारों में जो आप भी तत्पर होते हैं और अन्य (शिष्यों) को भी लगाते हैं वह आचार्य मुनि ध्यान करने योग्य है, (अर्थात् उस के लिए नमस्कार हो)।

भावार्थ – द्रव्यलिंगी मुनि भी इन पांचों आचारों को ठीक आगम की आज्ञानुसार पालता है तो भी वह आचार्य नहीं है क्योंकि उस में वास्तविक सम्यग्दर्शन ज्ञान की पर्याय कि जो इन आचारों को सम्यक् बनाती है- वह

प्रगट नहीं हुई है। अत उन द्रव्यलिंगी से वास्तविक आचार्यपन का निषेध करने को दर्शनादि प्रधान पद दिया है। तप के साथ जो नर विशेषण है वह मिथ्यादृष्टि से हिंसा मय पंचाग्नि आदि तप का निषेध करने के लिये है जैन धर्म में १२ तप उत्तम श्रेष्ठ कहने की आगम पद्धति है क्योंकि ये सर्वथा अहिंसारूप है ये पंचाचार को स्वय तो निर्दोष पालते ही हैं किन्तु मुनियों को प्रायश्चित्त विधि द्वारा शुद्ध करके और योग्यतानुसार चतुर्विध संघ को इनकी योग्यता और पदानुकूल, पलवाते हैं। इसी योग्यता के आधार पर इनके ये आचार्य पर्याय प्रगट हुई है।

अब आचार्य अमितगति महाराज का आदेश सुनिये —

> चारयन्त्यनुमन्यन्ते पंचाचारं चरन्ति ये ।
> जनका इव सर्वेषां जीवानां हितकारणम् ॥
> येषां पादपरामर्श जीवा मुञ्चन्ति पातकम् ।
> सलिलं हिमरश्मीनां चन्द्रकान्तोपला इव ॥
> उपदेशं स्थिरं येषां चारित्रं क्रियतेतराम् ।
> ते पूज्यन्ते त्रिधाऽचार्य पद वय क्रियासुभि ॥

दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार वीर्याचार ये जो पाँच आचार हैं उनको जो सब जीवों को आचरण करवाते हैं और आप आचरण करते हैं जैसे पिता हित को आचरण कराता है। जिन के चरण का स्पर्श होने पर जीव पाप को त्यागता है जैसे चन्द्रमा की किरणों का स्पर्श होने पर चन्द्रकांत पत्थर जल को छोड़े

हैं, जिनके उपदेशों द्वारा चारित्र अतिशय कर स्थिर किया जाता है वे आचार्य हैं। श्रेष्ठ - पद जो मोक्षपद को जान की है वान्छा जिन के ऐसे पुरुष उनको मन वचन काय से पूजते हैं, इस प्रकार आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप कहा।

णमो अरहंताणं तीर्थंकर आप्त का स्वरूप

अरहंतो के लिये नमस्कार हो। आत्म विकास की श्रेणियां-साधु उपाध्याय आचार्य परमेष्ठीयों का कथन हो चुका। इन तीनों का गुणस्थान भी एक ही होता है छठे से बारहवां। इनकी गुरु संज्ञा भी है। ये तीनों दिगम्बर सन्त होते हैं। नियम से छद्मस्थ होते हैं। रत्नत्रय के धारी होते हैं, इनमें से थोड़ी सी विशेषता यही है कि उपाध्याय मुख्यतया मुनियों के अध्यापक पाठक होते हैं और आचार्य मुनि संघ के संरक्षक होते हैं। आत्म साधना की अपेक्षा तीनों साधु होते हैं और समान होते हैं।

इनमें से कोई भी साधु या आचार्य जब ध्यान में विशेष लीन हो जाते हैं तो उनके शुक्ल ध्यान रूप आठवें से बारहवें गुणस्थान होता है। जिसके फल स्वरूप घातिकर्मों के क्षय हो जाते हैं। इन घातिकर्मों के क्षय होते ही आत्मा का ज्ञायक स्वरूप जो आजतक शक्ति रूप से सत्ता में पड़ा था रहा अपने स्वभाव परिणमन को अंगीकार कर लेता है और फल स्वरूप अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त सुख और अनन्त वीर्य रूप चतुष्टय आत्मा में प्रकट हो जाता है। इन्द्रिय ज्ञान का सम्बन्ध टूट जाता है। आत्मा बिना इन्द्रिय और मनके तीन काल और तीन

लोक के समस्त पदार्थों को युगपत् एक समय में सीधा स्वतन्त्र आत्मा से जानने देखने लगता है। इन्द्रिय और इन्द्रिय विषयों के भोग का सम्बन्ध भी समाप्त हो जाता है और ज्ञायक के प्रदेशों में से समय समय उठने वाला अनन्त अतीन्द्रिय सुख को भोगा करता है।

अनन्त वीर्य के बल से इन ज्ञान दर्शन सुख को स्थिर रखता है स्वत अपने परिणमन को बदल परम औदारिक हो जाता है और स्फटिक वत निर्मल शुद्ध हो जाता है आहार निहार आदि शरीर सम्बन्धी सब क्रियायें वा दुःख मिट जाते हैं। अर्थात अन्तरंग और बहिरंग (आत्मसम्बन्धी और शरीर संबंधी) सब दोष मिट जाते हैं जिसके कारण १८ दोष रहित और शुद्ध कहे हैं। ऐसा आत्मा का एक दम अलौकिक विकाश होता है। जिस विकाश (पर्याय) का नाम अरहन्त है। ये सकल परमात्मा (शरीर सहित परमात्मा) जीवन मुक्त कहलाते हैं। गुणस्थान तेरहवां हो जाता है। उपसर्गों और परीषहों का सर्वथा अभाव हो जाता है। अरहंत साक्षात मोक्षमार्गी हैं। आत्मोन्नति की यह दशा इस गुणस्थान में प्रत्येक जीव को होती है।

इस प्रकार इस गुणस्थान में धर्म (रत्नत्रय) की अपेक्षा कुछ अन्तर न रहने पर भी पुण्य की अपेक्षा कुछ जीवों में कुछ अंतर होता है और वह यह है कि कुछ जीव तीर्थंकर प्रकृति वाले होते हैं। उसका यहाँ तेरहवें गुणस्थान में उदय हो जाता है। जिसके फल स्वरूप इन्द्र अपने सेवकों से समवशरण की रचना कराता है। जिसमें १२ सभा होती हैं। यहां स्वत उन की दिव्यध्वनि खिरती है अघाति कर्मों के उदय के कारण खिरती है केवली का

को, उपयोग इसमें नहीं लगता, वे तो उस समय भी आत्म-गुण हो रहते हैं। केवल ज्ञान के कारण इस वाणी को प्रमाणता है, ऐसा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। गणधर इसे झेल कर द्वादशांग की अंग पूर्व रूप रचना करते हैं।

भव्यों के पुण्यानुसार और भगवान के योग रहने से देश विदेश में विहार होकर धर्मामृत की वर्षा होती है। जिसको सुन कर भव्य जीव संसार तापको दूर करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक तीर्थंकर अपनी शेष आयु प्रमाण इस काम को किया करते हैं। वाणी के कारण इनकी आप्त संज्ञा हो जाती है। णमो अरहंताणं में मुख्यतया इन जीवों को (तीर्थंकरों को-आप्त को) नमस्कार किया गया है। क्योंकि चौंतीस अतिशय तथा आठ प्रातिहार्य इन के ही होते हैं। इन भावों को श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने निम्न दो पदों में गूंथा है—

णमो अरिहंताण का वाच्य अर्थ

घणघाइकम्मरहिया केवलणाणाइपरमगुण- सहिया ।

चोतिसअइसजुत्ता अरिहंता एरिसा होंति ॥१॥

इय घाइकम्ममुक्को अट्ठारहदोसवज्जिओ सयलो

तिहुवण भवणपदीवो देऊ मम उत्तमं बोहं ।

अरहंत भगवान जो अत्यन्त सघन बंधे हुए थे, ऐसे चार घाति ज्ञानावरण, मोहनीय और अन्तराय (आत्म गुणों को घातने वाले) कर्मों को नष्ट कर देने के कारण मल से रहित हो जाते हैं और इसके फल स्वरूप जो अनन्तज्ञान अनन्त दर्शन अनन्तसुख अनन्तवीर्य आदि

अनन्त उत्कृष्ट गुणों सहित हो जाते हैं तथा जो अपने विशिष्ट पुण्योदय से चौतीस अतिशय संयुक्त होते हैं–ऐसे अरहंत होते हैं। इस प्रकार ये चार घातिकर्मों से मुक्त आत्मासशरीर होने पर भी जन्म जरा आदि अठारह दोषों से रहित होते हैं। इसे ही दूसरे शब्दों मे जीवन मुक्त अथवा सदेह मुक्त आत्मा कहते हैं। ये तीन भुवन के प्रकाश करने के लिये प्रदीप स्वरूप भगवान अरहन्त मुझे उत्तम बोध दें।

और भी —

प्रातिहार्याष्टकं कृत्वा येषा लोकातिशयिनाम ।
सपर्यां चक्रिरे सर्वे सादरा भुवनेश्वरा ॥४॥
वचासि तापहारीणि यथासोव पयोमुच ।
खिन्नतो लोकपुण्येन भूतले विहरति ये ॥५॥
आद्यसंहतिसंस्थानाः निःस्वेदा क्षीरशोणिता ।
राजते सुन्दरा येषा सुगंधामलता तनु ॥७॥
येषां द्विष्टः क्षयं याति तुष्टो लक्ष्मी मपद्यते ।
न रुष्यति न तुष्यति ये तयोः समभूरेय ॥८॥
लक्ष्मी सातिशया येषा भुवनस्य यतोधिरोम् ।
अनन्यभावनी शक्तो वक्तु कश्चिन्न विद्यते ॥६॥
रागद्वेषमदक्रोधलोभमोहादयोऽखिला ।
येषु दोषा न तिष्ठन्ति तप्तेषु नकुला इव ॥१०॥
शक्तितो भक्तितोऽर्हतो जगतीपतिपूजिता ।
ते द्वेधा पूजया पूज्या द्रव्यभावस्वभावया ॥११॥

जिन के छत्र चमर आदि आठ प्रातिहार्य रच कर सवलोक के नायक जो इन्द्रादिक हैं वे आदर सहित लोक में अतिशय उपजाने वाली पूजा करते भए॥४॥ और जैसे मेघ जल को बरसाता लोक में विचरे तैसे संताप हरनेवाले वचनों को फैलावते सन्ते भव्य जीवों के पुण्यकर पृथ्वी तल में विहार करे है ॥५॥ और जिन का देह सुंदर सुगंध रूप निर्मल सोह है। कैसा है देह आदि का वज्र वृषभ नाराच है संहनन जिस में और आदि का समचतुरस्र है संस्थान जिस का और पसेव (पसीना) रहित और दूध समान सफेद है रुधिर (खून) जिन का ऐसा है ॥७॥ और जिन से द्वेष करने वाला पुरुष नाश को प्राप्त होय है और भक्ति करने वाला लक्ष्मी को प्राप्त होवे है और वे भगवान न द्वेष करते हैं और न राग करते हैं तिन दोउनि में समान परिणति है ।८॥ जिन की अतिशय सहित और तीन भुवन को संतोष करने वाली और अन्य हरिहर आदि में नपाइए एसी जो लक्ष्मी उस को कहने को कोई समर्थ नहीं ।६॥ और राग द्वेष मद क्रोध लोभ मोह इत्यादिक समस्त दोष जिनमें नहीं हैं जैसे तप्त भूमि में ओले नहीं रहते हैं ॥१०॥ इन्द्र आदिको के द्वारा पूजित वे अरहन्त भगवान शक्ति भक्ति से द्रव्य भाव स्वभाव रूप दोय प्रकार पूजाकर पूजने योग्य हैं ॥११॥

अरिहन्त परमेष्ठी का स्वरूप पूरा हुआ अब सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप कहते हैं

णमो सिद्धाण

सिद्धों को हमारा नमस्कार हो। सिद्ध आत्मा का सर्वोत्कृष्ट विकास है और आत्मा का वास्तविक स्वरूप है।

अत इस पर हम सूक्ष्मता से कुछ विस्तार के साथ विचार करेंगे। सर्व प्रथम सिद्धों के स्वरूप पर लिखी हुई पचास्तिकाय में श्री कुन्दकुन्दाचार्य की यह गाथा है —

णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा
तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो

अर्थ—ज्ञानावरण आदि (भाव) द्रव्यकर्म जीव के साथ भली भांति अनुबद्ध हैं। उनका अभाव करके वह जीव अभूतपूर्व-सिद्ध पर्याय को प्राप्त होता है।

भावार्थ—यदि पर्याय दृष्टि से देखें तो सिद्धत्व रूप से, जो ज्ञायक का परिणमन है वह सादि अनन्त है। फिर भी वह शक्ति की अपेक्षा से असत् का उत्पाद नहीं है। अनादि काल से संसारी जीव म जहां पर्यायदृष्टि से मनुष्यादि ४ गतियों रूप से परिणमन हो रहा था वहां द्रव्यदृष्टि से इन पर्यायों में रहने वाला अनादि अनन्त रूप था। स्वभाव की अपेक्षा कोई नई चीज कहीं से नहीं आई है। इस गाथा से हमें 'सोऽहं' की शिक्षा मिलती है कि जो सिद्ध है वैसा मेरा स्वभाव है। मेरा यह पर्याय स्वरूप तो क्षणिक है, कमकृत है, अभूतार्थ है व्यवहार है और मेरा नित्य है, अकृत्रिम है, भूतार्थ है निश्चय है। अब श्री कुन्दकुन्द आचार्य की नियमसार में निम्न गाथा सिद्ध के स्वरूप की प्रकाशक है —

णट्ठट्ठकम्मबंधा अट्ठमहागुणसमण्णिया परमा।
लोयग्गठिया णिच्चा सिद्धा ते एरिसा होंति ॥७२॥

—नियमसार

सिद्धों ने आठ कर्मों के बंध को नष्ट किया है। सिद्ध आठ महागुणों सहित हैं। सिद्ध परम हैं। सिद्ध लोक

वे कम में स्थित हैं और सिद्ध नित्य हैं-ऐसे वे सिद्ध होते हैं। भावार्थ आगे बिलकुल स्पष्ट किया गया है।

जाइजरमरणरहियं परमं कम्मट्ठवज्जियं सुद्धं।
णाणाइचउसहावं अक्खयमविणासमच्छेयं ॥१७६॥

—नियमसार।

सिद्ध भगवान जन्म, जरा मरण रहित हैं। परम हैं। आठ कर्म रहित हैं। शुद्ध हैं, ज्ञानादिक चार स्वभाव वाले हैं। अक्षय हैं। अविनाशी हैं और अछेद्य हैं।

अव्वाबाहमणिंदियमणोवमं पुण्णपावणिम्मुक्कं।
पुणरागमणविरहियं णिच्चं अचलं अणालम्बम्

—नियमसार

सिद्ध भगवान अव्याबाध हैं। अतीन्द्रिय हैं। अनुपम हैं। पुण्यपाप रहित हैं। पुनरागमन रहित हैं। नित्य हैं। अचल हैं और निरालम्ब हैं।

णवि दुक्खं णवि सुक्खं णवि पीडा णेव विज्जदे बाहा
णवि मरणं णवि जणणं तत्थेव य होइ णिव्वाणं।

नियमसार।

जहां दुःख नहीं है। जहां इन्द्रिय सुख नहीं है। जहां पीड़ा नहीं है। जहां बाधा नहीं है। जहां मरण नहीं है। जहां जन्म नहीं है। वहां निर्वाण है।

णवि इन्द्रिय उवसग्गा णवि मोहो विम्हियो णणिद्दाय
ण तिण्हा णेव छुहा तत्थेव य होइ णिव्वाणं १८०

—नियमसार

जहां इन्द्रियां नहीं हैं। जहां उपसर्ग नहीं है। जहां विस्मय नहीं है। जहां तृषा नहीं है। जहां क्षुधा नहीं है वहां निर्वाण है

णवि कम्मं णोकम्मं णवि चिंता णेव अट्टरुद्दाणि ।
णवि धम्मसुक्कझाणे तत्थेव य होइ णिव्वाणं १८१
नियमसार ॥

जहां कर्म और नोकर्म नहीं है । जहां चिंता नहीं है । जहां आर्त और रौद्र ध्यान नहीं है । जहां धर्म और शुक्ल ध्यान नहीं है-वहां निर्वाण है

विज्जदि केवलणाणं केवलसोक्खं च केवलं विरियं ।
केवलदिट्ठि अमुत्तं अत्थित्तं सप्पदेसत्तं । १८२॥

सिद्ध भगवान को केवल ज्ञान होता है, केवल दर्शन होता है । केवल सुख होता है और केवल वीर्य होता है । अमूर्तत्व होता है । अस्तित्व होता है । और सप्रदेशत्व होता है ।
नियमसार

अब सिद्धों के स्वरूप पर प्रकाश डालने वाली एक गाथा भगवती आराधना और एक पद्य संग्रह में है —

णिव्वाविदूण संसारमहग्गिं परमणिव्वुदिजलेण ।
णिव्वादिभावपत्तो गदजाइजरामरणरोगो ॥
भगवती आराधना

जह कंचणमग्गिगयं मुंचइ किट्टेण कालियाए य ।
तह कायबंधमुक्का अकाइया झाणजोएण ॥

परम शान्ति रूप जलसे संसार रूप अग्निको बुझाकर जो निर्वाणरूप अपने स्वभावमें स्थित हो गये हैं जिन के जन्म जरा मरणरूप रोग नहीं रहे हैं वे शरीर रहित मुक्तात्मा सिद्ध कहलाते हैं । जैसे आग में तपाया हुआ सोना किट्टिका (बहिरंगमल) और कालिमा (अन्तर मल) से छूट जाता है इसी प्रकार ध्यान के द्वारा शरीर तथा द्रव्य है कर्म (ज्ञानावरणी आदि अष्ट कर्म रूप बहिरंगमल) एव भावकर्म (राग द्वेष आदि भाव रूप अन्तरंग, मल) रहित

होकर यह जीव सिद्धात्मा बन जाता है। काय के वचन से मुक्त हुए ये जीव अकायिक कहलाते हैं।

श्री नेमीचन्द आचार्य ने गोमटसार जीवकाण्ड में भी निम्न गाथा सिद्धों के स्वरूप की दी है —

अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ।।६८।।जीवकाण्ड

जो ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित हैं। अनन्त सुखरूपी अमृत के अनुभव करने वाले शान्तिमय हैं। नवीन कर्म बंध को कारणभूत मिथ्यादर्शनादि भावकर्म रूपी अञ्जन से रहित हैं। नित्य हैं। ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, अव्याबाध, अवगाहन, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघु ये आठ मुख्य गुण जिनके प्रकट हो चुके हैं। कृतकृत्य हैं (जिनको कोई कार्य करना बाकी नहीं रहा है) लोकके अग्रभाग में निवास करने वाले हैं। उनको सिद्ध कहते हैं।

जाइजरामरणभया संजोगविजोग दुक्खसण्णाओ — —
रोगादिया य जिस्से ण संति सा होदि सिद्ध गई।।१५१।।जीवकाण्ड

पंचेन्द्रिय आदि जाति बुढ़ापा मरण, भय, अनिष्ट संयोग, इष्टवियोग, इन से होनेवाला दुःख, आहारादिविषयक संज्ञा (वाञ्छा) और रोगादिक जिस गति में नहीं पाये जाते उसको सिद्धगति कहते हैं।

णवि इंदियकरणजुदा अवग्गहादीहिं गाहया अत्थे।
णेव य इंदियसोक्खा अणिंदियाणंतणाणसुहा।।१७३।।जीवकाण्ड

वे मुक्त जीव इन्द्रियों की क्रिया से युक्त नहीं हैं। तथा अवग्रहादिक क्षयोपशमिक ज्ञान के द्वारा पदार्थ का ग्रहण नहीं करते। और इन्द्रिय जन्य सुखसे भी युक्त नहीं हैं, क्योंकि उन मुक्त जीवों का अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख अतिन्द्रिय है।

जह कंचणमग्गिगय मुंचइ किट्टेण कालियाएय
तह कायबंधमुक्का अकाइया झाणजोगेण॥२०२॥ जीवकाण्ड

जिस प्रकार अग्निके द्वारा सुसंस्कृत सुवर्ण बाह्य और अभ्यन्तर दोनों ही प्रकार के मल से रहित हो जाता है उस ही प्रकार ध्यान के द्वारा यह जीव शरीर और कर्मबन्ध से रहित होकर सिद्ध हो जाता है।

किण्हादिलेस्सरहिया संसारविणिग्गय अणंतसुहा।
सिद्धिपुरं संपत्ता अलेस्सिया ते मुणेयव्वा॥५५५॥ जीवकाण्ड

जो कृष्ण आदि छहों लेश्याओं से रहित हैं, अतएव जो पंच परिवर्तनरूप संसार समुद्र के पार को प्राप्त हो गये हैं, तथा जो अतीन्द्रिय अनन्त सुख से तृप्त हैं, और आत्मोपलब्धिरूप सिद्धिपुरी को जो प्राप्त हो गये हैं, उन जीवोंको सिद्ध भगवान कहते हैं।

ण य जे भव्वाभव्वा मुत्तिसुहातीदणंतसंसारा।
ते जीवा णायव्वा णेव य भव्वा अभव्वाय॥५५८॥ जीवकाण्ड

जिन का पांच परिवर्तन रूप अनन्त संसार सर्वथा छूट गया है और जो मुक्ति सुख के भोक्ता हैं उन जीवों

को न तो भव्य समझना चाहिये और न अभव्य समझना चाहिये, क्योंकि अब उनको कोई नवीन अवस्था प्राप्त करना शेष नहीं रहा है इसलिये वे भव्य भी नहीं हैं और अनन्त चतुष्टय को प्राप्त हो चुके हैं इसलिये अभव्य भी नहीं हैं।

श्री नेमीचन्द्र आचार्य ने द्रव्यसंग्रह में सिद्धों की ये दो गाथा दी हैं—

णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।

लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवएहिं संजुत्ता ॥१४॥

णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो भाएइ लोयसिहरत्थो ॥५१॥ द्रव्यसंग्रह

सिद्ध भगवान ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित हैं। सम्यक्त्व आदि आठ गुणों के धारक हैं। अन्तिम शरीर से कुछ कम आकारवाले हैं और लोक के अग्रभाग में स्थित हैं। नित्य हैं तथा उत्पाद व्यय से संयुक्त हैं। आठकर्म और शरीर को नष्ट करनेवाले हैं। लोकालोक को जानने देखने वाले हैं, पुरुषाकार हैं। लोक शिखर पर विराजमान हैं ऐसी आत्मा सिद्ध परमेष्ठी है। अत तुम सब इस सिद्ध परमेष्ठी का ध्यान करो।

उपरोक्त जितनी प्राकृत की गाथा दी हैं उन सब का भावार्थ इसप्रकार है—

१ निष्कर्माण—मुक्त आत्मा निष्कर्माण हैं क्योंकि द्रव्यकर्म और भावकर्म से विमुक्त हुए हैं। द्रव्यकर्म वे पुद्गल स्कन्ध है और भावकर्म वे चिद्विवर्त हैं। चित्शक्ति अनादि ज्ञानावरण आदि कर्मों के सम्बन्ध से संकुचित

व्यापारवाली होने के कारण ज्ञेयभूत विश्व के (समस्त पदार्थों के) एक एक देश में क्रमश व्यापार करती हुइ विवर्तन को प्राप्त होता है । किन्तु जब ज्ञानावरणादि कर्मो का सम्बन्ध विनष्ट होता है तब वह ज्ञेयभूत विश्व के सब देशों में युगपत व्यापार करती है । यही द्रव्य कर्मो के निमित्तभूत भावकर्मो के कर्तृत्व का विनाश है । यही विकार पूर्वक अनुभव के अभाव के कारण औपाधिक सुख दु ख परिणामों के भोक्तृत्व का विनाश है यही अनादि विवर्तन के खेद के विनाश से जिसका अनन्त चैतन्य सुस्थित हुवा है ऐसे आत्मा के स्वत त्र स्वरूपानुभूति लक्षण सुख का (स्वतन्त्र स्वरूप की अनुभूति जिस का लक्षण है ऐसे सुख का) भोक्तृत्व है ।

२ अष्टगुण – अनादि से आठ कम के निमित्त से जो नैमित्तिक आठ गुण अशुद्ध हो रहे थे-प्राय औदयिक आदि भाव रूप परिणमन कर रहे थे, वे सर्वथा क्षायिक भाव,रूप,परिणत हो जाते ह । अर्थात जैसा उन का स्वभाव था वे ठीक उसी रूप में आ जाते हैं । विकृति सब निकल जाती है । बस यहि आठ गुणों की प्राप्ति है । वे आठ गुण इस प्रकार है —

सम्यकत्व दर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहना ।
सूक्ष्म वीरजवान, निराबाध गुण सिद्ध के ।।सिद्ध पूजा।।

(१) अचल सम्यक्त्व मोहनीय कर्म के क्षय से समस्त जीवादि तत्त्वों के विषय में विपरीताभिनिवेश रहित परिणाम रूप अचल सम्यक्त्व प्रकट होता है ।

(२) अनन्तज्ञान ज्ञानावरणीय के क्षय से युगपत लोका

लोक में रहने वाली समस्त वस्तु विशेष का परिछेदक अनन्तज्ञान (शुद्ध ज्ञान) प्रकट होता है।

(३) अनन्तदर्शन दर्शनावरण के क्षय से वस्तु सामान्य का ग्राहक अनन्त दर्शन (शुद्ध दर्शन) प्रगट होता है।

(४) अनन्तवीर्य–अन्तराय कर्म के क्षय से अनन्त पदार्थों की जानकारी के विषय में खेद रहित ज्ञानपना रूप अनन्तवीर्य प्रगट होता है।

(५) अव्याबाध सुख—वेदनीय कर्म के क्षय से स्वस्वरूप, अमूर्तस्वरूप अव्याबाध अनन्त सुख अनुभव करता है।

(६) परम सूक्ष्मता-आयु कर्म के क्षय से परम सूक्ष्मता होती अर्थात् अमूर्तिक अवस्था प्राप्त हो जाता है।

(७) परम अवगाहन-नाम कर्म के क्षय से परम अवगाहना गुण प्रगट होता है।

(८) अगुरुलघु–गोत्र कर्म के क्षय से स्वभाविक अगुरुलघु गुण प्रगट होता है।

(३) चरमदेह से किंचित ऊन–देह प्रमाणत्व के कारण जो आत्मा के प्रदेश अन्तिम शरीराकार थे वे शरीर के निकल जाने पर कुछ कम उसी आकृति को धारण किये हुए निरुपाधि स्वरूप में जा सिद्धों में विराजमान हो जाते हैं। इसके न मानने से शून्यता का प्रसंग आता है अथवा जो शून्यरूप मोक्ष मानते हैं उनका इसी से खण्डन होता है। मोक्ष होने पर आत्मा अणुमात्र हो जाता हो या सर्वलोक में फैल जाता हो या ज्योति में ज्योति मिलकर अद्वैत ब्रह्म बन जाता हो सो बात नहीं है।

४ लोकाग्रस्थिता—ये विशेषता पर क्षेत्र की अपेक्षा

है। चौदहवें गुणस्थान के अन्त में जो आत्मा कर्म से मुक्त हुवा तो क्या वहीं ठहरा रहता है या सर्व लोक में फैल कर ज्योति में ज्योति मिल जाती है ? आखिर क्या दशा होती है ? इस को समझाने के लिये कहा है कि ऊर्ध्व गमन स्वभाव के कारण ऊपर उड़ता है और लोक के अग्रभाग में जाकर उसी अन्तिम पुरुषाकार में बना रहता हुआ स्थित हो जाता है। आगे धर्मास्तिकाय का अभाव होने से गमन नहीं करता। और संकोच विस्तार के कारण योग का अभाव होने से आकारान्त का भी धारण नहीं करता। फिर अनन्त काल तक उसी आकार में निश्चल ज्यों का त्यों वहीं ठहरा रहता है। इसी विशेषण के अन्तर्गत ऊर्ध्वगमन स्वभाव का भी निरूपण स्वतः हो जाता है। जहां मुक्त हुवा था वहीं ठहरा रहता हो या सर्व लोक व्यापारी होकर ठहरता हो सो बात नहीं है।

५ नित्य-यह अनादि सत संसार अवस्था में मनुष्य आदि पर्यायों में अपने स्वभाव का बिना छोड़े परिणमन किया करता था। संसार के अन्त होते ही उस नैमित्तिक उत्पाद व्यय का सदा के लिये अन्त हो जाता है। इस को नित्य विशेषण से सम्बोधित किया है। मुक्त होने के बाद फिर कभी संसार में आता हो इसका भी खण्डन हो जाता है।

६ उत्पादव्ययाभ्यां संयुक्तः - अब प्रश्न यह होता है कि जब मनुष्य आदि पर्यायों द्वारा उत्पादन व्यय सदा के लिये नष्ट हो जाता है तो क्या फिर वह परिणमन रहित कूटस्थ हो जाता है ? उत्तर सिद्धों के उत्पादन और व्यय दो प्रकार से घटित होते हैं। स्वप्रत्यय से और परप्रत्यय से। आगम की प्रमाणता से, माने जाने वाले

अगुरुलघु की षट्स्थान पतित हानि वृद्धि से सिद्धों के अपेक्षा उत्पाद और व्यय है। पर प्रत्यय की अपेक्षा उत्पाद और व्यय इस प्रकार घटित होते हैं कि 'प्रत्येक द्रव्य में वर्तमान पर्याय व्यक्त रहती है और शेष पर्यायें शक्ति रूप से अव्यक्त रहती हैं' प्रति समय वर्तमान व्यक्त पर्याय अव्यक्त हो जाती है और शक्ति रूप अन्यतम अर्थ पर्यायों में से द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव के निमित्त से व्यक्त हो जाती है। इसी प्रकार ज्ञान भी व्यक्त अव्यक्त रूप से जानता है। अर्थात् ज्ञेय पदार्थ भी प्रतिक्षण नवीन पर्याय के उत्पाद और पूर्व पर्याय के व्यय रूप से परिणत हो रहे हैं इनको जानने के कारण सिद्धों के ज्ञान में भी प्रतिक्षण परिणमन होता रहता है। अर्थात् जिस पदार्थ की विवक्षित पर्याय इस समय उत्पन्न हुई, उसका सिद्धों के ज्ञान में उत्पाद रूप से परिणमन हुआ, और अनन्तर क्षण में जब उस पर्याय का व्यय हुआ, सिद्धों का ज्ञान भी व्यय रूप से परिणत हुआ, इस प्रकार परप्रत्यय से सिद्धों के उत्पाद और व्यय घटित हो जाते हैं (श्री सर्वार्थ सिद्धि अध्याय ५ सूत्र ७ की टीका)।

७ परम-सिद्ध परम हैं अर्थात आत्मा के उच्चतम विकास रूप हैं इस से ऊपर और आत्मा का कोई विकास नहीं है। (८)-अचल अर्थात योग-कम्पन से रहित हैं। इनके अतिरिक्त और जितने विशेषण आये हैं वे सब सरल होने के कारण नहीं खोले हैं। श्री पूज्यपाद आचार्य सिद्ध के स्वरूप को इस प्रकार लिखते हैं—

येनात्माऽबुध्यतात्मैव परत्वेनैव चापरम् ।
अक्षयानन्तबोधाय तस्मै सिद्धात्मने नमः ।

जिस सिद्ध आत्मा के द्वारा आत्मा आत्म रूप से और पर स्वरूप से जाना गया है उस अविनाशी अनन्त ज्ञान स्वरूप सिद्ध आत्मा को नमस्कार हो।

श्री अमृत चन्द्र आचार्य सिद्ध के स्वरूप को इस प्रकार निबद्ध करते हैं —

नित्यमपि निरुपलेप स्वरूपसमवस्थितो निरुपघात ।
गगनमिव परमपुरुष परमपदे स्फुरति विशदतम ॥२२३॥
कृतकृत्य परमपदे परमात्मा सकलविषय विषयात्मा ।
परमानन्दनिमग्नो ज्ञानमयो नन्दति सदैव २२४

सिद्ध भगवान आकाश की तरह सदा ही कर्म रूप रज के लेप से रहित हैं। स्वरूप में भले प्रकार स्थित रहते हैं। उपघात रहित हैं नाश रहित हैं)। परम पुरुष हैं (अर्थात आत्मा की उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त हैं)। अत्यन्त निर्मल हैं (द्रव्य कर्म-भावकर्म-नोकर्म से सर्वथा रहित हैं) ऐसे सिद्ध भगवान परम पद में (मोक्ष अवस्था में) प्रकाशमान होते हैं॥२२३॥ परम पद में (मोक्ष अवस्था में) परमात्मा (सिद्ध भगवान कृतकृत्य हैं सम्पूर्ण विषयों के (समस्त ज्ञेयों के) जानने वाले हैं। ज्ञानमय हैं। आत्मा के उत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख में मग्न हैं (आत्मिक सुख भोगते हैं)—इस प्रकार वे सदा आनन्द रूप हैं-सुखमय हैं।

स्वामी समन्त भद्र कथित सिद्धों का स्वरूप इस प्रकार है —

जन्मजराऽऽमयमरणै शोकैर्दु खैर्भयैश्चपरिमुक्तम्
निर्वाणं शुद्ध सुखं नि श्रेयसमिष्यते नित्यं १३१

रत्नकरंड श्रावकाचार ॥

' निर्वाण , सिद्ध भगवान) जन्म (देहान्तर प्राप्ति), जरा (बुढापा) रोग, मरण, (देहान्तर प्राप्ति के लिये वर्तमान देह का त्याग), शोक दुःख, भय और चकार या उपलक्षण से रागद्वेष, काम क्रोध आदि से रहित होते हैं। निर्वाण (सिद्ध भगवान) सदा स्थिर रहने वाले शुद्ध सुख स्वरूप हैं (सकल विभाव भाव के अभाव को लिये हुवे बाधा रहित परम निराकुलता मय स्वाधीनता सहजानन्द रूप है), इसे निःश्रेयस (सिद्ध) कहते हैं।

विद्यादर्शन शक्तिस्वास्थ्यप्रह्लादतृप्तिशुद्धियुज
निरतिशया निरवधयो निःश्रेयसमावसंतिसुखं

रत्नकरण्ड श्रावकाचार

सिद्ध भगवान विद्या (केवलज्ञान) दर्शन (केवल दर्शन, शक्ति (अनन्तवीर्य) स्वास्थ्य स्वात्म-स्थिरता रूप परम औदासीन्य (उपेक्षा), प्रह्लाद (अनन्त सुख), तृप्ति विषयों अनाकांक्षा), और शुद्धि (द्रव्य भाव आदि कर्ममल रहितता) इन गुणों से युक्त हैं। साथ ही निरतिशय हैं (विद्यादि गुणों में हीनाधिकता के भाव से रहित हैं। और निरवधि हैं (नियत काल की मर्यादा से शून्य हुए सदा से अपने स्वरूप में स्थिर रहनेवाले हैं) वे (ऐसे सिद्ध जीव) निःश्रेयस सुख में पूर्णतया निवास करते हैं।

काले कल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रियालक्ष्या
उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोकसंभ्रान्तिकरण पटु

रत्नकरण्ड श्रावकाचार

सैकड़ों कल्पकाल बीत जाने पर भी सिद्धों के विक्रियाँ नहीं देखी जाती है (उनका स्वरूप कभी भी विकार भाव अथवा वैभाविक परिणति को प्राप्त नहीं होता) और यदि

जिस सिद्ध आत्मा के द्वारा आत्मा आत्म रूप से और पर स्वरूप से जाना गया है उस अविनाशी अनंत ज्ञान स्वरूप सिद्ध आत्मा को नमस्कार हो।

श्री अमृत चन्द्र आचार्य सिद्ध के स्वरूप को इस प्रकार निबद्ध करते हैं —

नित्यमपि निरुपलेप स्वरूपसमवस्थितो निरुपघात ।
गगनमिव परमपुरुष परमपदे स्फुरति विशदतम ॥२२३॥
कृतकृत्य परमपदे परमात्मा सकलविषय विषयात्मा ।
परमानन्दनिमग्नो ज्ञानमयो न दति सदैव २२४

सिद्ध भगवान आकाश की तरह सदा ही कर्म रूप रज के लेप से रहित हैं। स्वरूप में भले प्रकार स्थित रहते हैं। उपघात रहित हैं नाश रहित हैं)। परम पुरुष हैं (अर्थात आत्मा की उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त हैं)। अत्यन्त निर्मल हैं (द्रव्य कर्म-भावकर्म-नोकर्म से सर्वथा रहित हैं) ऐसे सिद्ध भगवान परम पद में (मोक्ष अवस्था में) प्रकाशमान होते हैं ॥२२३॥ परम पद में (मोक्ष अवस्था में) परमात्मा (सिद्ध भगवान कृतकृत्य हैं सम्पूर्ण विषयों के (सब ज्ञेयों के) जानने वाले हैं। ज्ञानमय हैं। आत्मा के उत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख में मग्न है (आत्मिक सुख भोगते हैं)—इस प्रकार वे सदा आनन्द रूप हैं-सुखमय हैं।

स्वामी समन्त भद्र कथित सिद्धों का स्वरूप इस प्रकार है —

जन्मजराऽऽमयमरणैः शोकैर्दुःखैर्भयैश्चपरिमुक्तम्
निर्वाणं शुद्ध सुखं निःश्रेयसमिष्यते नित्यं १३१
रत्नकरंड श्रावकाचार ॥

" निर्वाण सिद्ध भगवान्) जन्म (देहान्तर प्राप्ति), जरा (बुढ़ापा) रोग, मरण, (देहान्तर प्राप्ति के लिये वर्तमान देह का त्याग), शोक दुःख, भय और चकार या उपलक्षण से रागद्वेष, काम क्रोध आदि से रहित होते हैं। निर्वाण (सिद्ध भगवान) सदा स्थिर रहने वाले शुद्ध सुख स्वरूप हैं (सकल विभाव भाव के अभाव को लिये हुवे बाधा रहित परम निराकुलता मय स्वाधीनता सहजानन्द रूप हैं), इसे निःश्रेयस (सिद्ध कहते हैं ।

विद्यादर्शन शक्तिस्वास्थ्यप्रह्लादतृप्तिशुद्धियुजः
निरतिशया निरवधयो निःश्रेयसमावसन्तिसुखं

रत्नकरण्ड श्रावकाचार

सिद्ध भगवान विद्या (केवलज्ञान) दर्शन (केवल दर्शन) शक्ति (अनन्तवीर्य) स्वास्थ स्वात्म-स्थिरता रूप परम औदासीन्य (उपेक्षा), प्रह्लाद (अनन्त सुख), तृप्ति विषयों अनाकांक्षा), और शुद्धि (द्रव्य भाव आदि कर्ममल रहितता) इन गुणों से युक्त हैं । साथ ही निरतिशय हैं (विद्यादि गुणों में हीनाधिकता के भाव से रहित हैं) और निरवधि हैं (नियत काल की मर्यादा से शून्य हुए सदा से अपने स्वरूप में स्थिर रहनेवाले हैं) वे (ऐसे सिद्ध जीव) निःश्रेयस सुख में पूर्णतया निवास करते हैं ।

काले कल्पशतेऽपिचगते शिवाना न विक्रियालक्ष्या
उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोकसंभ्रान्तिकरण पटु

रत्नकरण्ड श्रावकाचार

सैकड़ों कल्पकाल बीत जाने पर भी सिद्धों के विक्रिया नहीं देखी जाती है (उनका स्वरूप कभी भी विकार भाव अथवा वैभाविक परिणति को प्राप्त नहीं होता) और यदि

त्रिलोक को समाप्ति कारक (उसे एकदम उलट पलट कर देने वाला) कोई महान असाधारण उत्पात (गड़बड़) भी हो तो भी उनके विकार नहीं देखा जाता है (वे बराबर अपने स्वरूप में स्थिर बने रहते हैं)।

निःश्रेयसमधिपन्नास्त्रैलोक्यशिखामणिश्रियं दधते
निष्किट्टिकालिकाछविचामीकरभा सुधामान

जो सिद्ध निःश्रेयस को [निर्वाण को-मोक्ष को] प्राप्त होते हैं वे कीट और कालिमा से रहित छविवाले सुवर्ण के समान देदीप्यमान आत्मा होते हुये तीन लोक के चूड़ामणि जैसी शोभा को धारण करते हैं। भावार्थ-जिस प्रकार खान के भीतर सुवर्ण पाषाण में स्थित सुवर्ण कीट और कालिमा से युक्त हुआ अपने स्वरूप को खोए हुआ निस्तेज बना रहता है। जब अग्नि आदि के प्रयोग द्वारा उसका वह सारा मल छूट जाता है तब वह शुद्ध होकर देदीप्यमान हो उठता है। उसी प्रकार संसार में स्थित यह जीवात्मा भी द्रव्य कर्म, भाव कर्म और नोकर्म के मेल से मलिन हुआ अपने स्वरूप को खोए निस्तेज बना रहता है। जब रत्नत्रय की अग्नि में इसका वह सब कर्ममल जलकर अलग हो जाता है तब वह भी अपने स्वरूप का पूरा लाभ कर देदीप्यमान हो उठता है। इतना ही नहीं बल्कि त्रैलोक्य चूड़ामणि की शोभा को धारण करता है अर्थात् सर्वोत्कृष्ट पद को प्राप्त करता है।

श्री अमित गति आचार्य सिद्ध के स्वरूप को इस प्रकार वर्णन करते हैं—

ये कल्मषाष्टकं लुप्त्वा विशुद्धध्यानतेजसा।
प्राप्ताष्टगुणैश्वर्यमात्मनीनमनव्ययम्॥

क्षुधातृषाश्रमस्वेदनिद्रातोषाद्यभावत ।
अन्नपानाशनस्नानशयना भरणादिभि ।
क्षुराद्विनोदनैर्येषा नास्ति जातु प्रयोजनम् ।
सिद्धे हि वाञ्छिते कार्ये कारणान्वेषणं वृथा
कर्मक्षयपायतो येषा न पुनर्जन्म जायते ।
विलय हि गते बीजे कुत सप्ररोहतेऽङ्कुर ।
रागद्वेषादयो दोषा येषा सन्ति न कर्मजा ।
निमित्तरहितं क्वापि न नैमित्तं विलोक्यते
न निर्वृतिमिमां मुक्त्वा पुनरायाति सन्मतिम्
शमद हि पदं हित्वा दुःखदं कं प्रपद्यते ॥
पुनरय प्राप्यते येषा न प्रमाणे कदाचन ।
आकाशस्येव नित्यस्य निर्मलस्य गरीयस ।
पश्यन्ति ये सुखाभूता लोकामंशलसंस्थिता
लोकं कर्मप्रकुरेण नाट्यमानमनारतम् ॥
येषा स्मरणमात्रेण पुंसा पाप पलायते ।
ते पूज्या न कथं सिद्धा मनोवाक्कायकर्मभि
अमितगतिश्रावकाचार ।

जिन्होंने निर्मल ध्यान अग्नि द्वारा आठ कर्मो को जलाकर आत्मा का हित और अविनाशी ऐसा सम्यक्त्व आदि आठ गुणों-रूप ऐश्वर्य पाया है । और क्षुधा, तृषा, श्रम, पसेव, निद्रा, हर्ष इत्यादि के अभाव से क्षुधादि के दूर करने वाले जो अन्न पान आसन स्थान, सोना, आभूषण इत्यादिको से कदाचित् कोई प्रयोजन नहीं, क्योंकि वांछित कार्य की सिद्धि भये पश्चात् कारण का ढूंढना वृथा है । भावार्थ—लोक में भूख आदि की पीड़ा होय है तब अन्नादिक हरिए है और सिद्ध भगवान के भूख आदि दोष

ही रहे नहीं तब अन्नादिकों को टेरना किस लिए ने तो सहज ज्ञानानन्द में मगन हैं। और जिनके कर्मों के अभाव से फिर जन्म नहीं होता है क्योंकि बीज के नाश होने पर अकुर कहा से होय, अपितु नहीं होय। भावार्थ-जन्म होने का कारण कर्म है तो उनके आठ कर्मों का अभाव भया तब जन्म कैसे होय। और कर्म अनित राग द्वेषादि दोष जिनके नहीं हैं क्योंकि निमित्त के अभाव में नैमित्तिक भाव कहीं भी नहीं देखे जाते हैं। भावार्थ—मोहादि कर्म निमित्त से नैमित्तिक राग आदि होते हैं। अब सिद्धों के मोहादि कर्म निमित्त रहा नहीं नैमित्तिक रागादि किसके द्वारा होय अर्थात् न होय। और ये सिद्ध भगवान मोक्ष अवस्था को छोड़कर फेर ससार में नहीं आते हैं। क्योंकि सुखदायक स्थान को छोड़कर दुख दायक स्थान को कौन प्राप्त होय? अर्थात् कोई भी न होय। और जिनका आकाश की तरह नित्य निर्मल महान् अनंत सुख प्रमाण (हद–नाप) नहीं पाया जाता है। और जो सुख रूप, लोक अग्रशिखर पर बैठे हुए, कर्म रूप नटके द्वारा निरन्तर नचाया जो लोक उसको देखते हैं। भावार्थ कर्मों कर जीवों की नाना अवस्था होती है उनको देखते हैं परतु रागादिक के अभाव से आप सुख रूप तिष्ठे हैं। और जिनके स्मरण मात्र से पुण्यों का पाप भाग जाता है। वे सिद्ध भगवान मन वचन काय की क्रिया द्वारा कैसे पूजने योग्य नहीं अपितु पूजने ही योग्य हैं।

लेख का सार

चौथ पाचवे छठ सातवें गुणस्थान के ज्ञानी और उपरोक्त पच परमेष्ठी के स्वरूप को नित्य विचारा करते

है।। माला फेरा करते है, तथा शुभ ध्यान में मनको ध्या
करते है जिसको धर्मध्यान या सामायिक कह सकते हैं
व ऐसा क्यों करते हैं ? इसका उत्तर यह है कि भेद
विज्ञान के द्वारा वे ये जान चुके हैं कि मैं मात्र मनुष्यादि
पर्याय रूप नहीं हूँ किन्तु ज्ञायक द्रव्य हूँ। और
ज्ञायक द्रव्य का श्रद्धान ज्ञान, आचरण करनेवालों को भी
ये पर्यायें (दशाएं) प्रगट होती हैं। इसलिए सातवें गुण
स्थान के दृढ़ अवलम्बन से अगले आगे गुणस्थान प्रगट
होते हैं। बस यही आत्म विकास का मार्ग है। इसकी
आगम प्रमाण ये गाथा श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने अपनी
बारह भावना तथा मोक्षपाहुड ग्रंथ में लिखी है —

अरुहा सिद्धायरिया उवज्झाया साहु पंचपरमेट्ठी।
ते विहु चिट्ठहि आदे तह्मा आदा हु मे सरणं ॥१॥
कुन्दकुन्द मोक्षपाहुड तथा द्वादश बारह भावना।

अर्थ-अरिहन्त सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु
ये पाच परमेष्ठी कहलाते हैं। ये सब आत्मा की पर्यायें
हैं। इसलिये आत्मा ही मेरा शरण है।

अपराजित मन्त्र और उसका माहात्म्य यह है। इसमें
अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय साधु इन पाच परमात्मा
या का स्वरूप बताया गया है। अरिहंत चार घातिया कर्म
रहित जीवन मुक्त–आत्मा को, सिद्ध अष्टकर्म रहित
मुक्तात्मा को, आचार्य साधु संघ के शासक [illegible]
उपाध्याय साधुओं के अध्यापक और [illegible]
और साधु आत्म साधना में रत संयमी [illegible]

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

अरिहन्तों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो उपाध्यायों को नमस्कार हो, लोक में सब साधुओं को नमस्कार हो। भावार्थ-साधुओं के साथ जो लोके सब शब्द जोड़े हैं वह व्याकरण के नियमानुसार अन्त्य दीपक होने के कारण प्रत्येक वाक्य के साथ लगाना चाहिये जैसे लोक में जितने अरिहंत हैं उन सब को मेरा नमस्कार हो। ऐसा ही अर्थ आगे भी करना चाहिये।

मन्त्र का माहात्म्य

एसो पंच णमोयारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ॥२॥

यह पंच नमस्कार मन्त्र सारे पापों का नाश करने वाला है और सब मंगलों में पहला मंगल है।

मंगल पाठ

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि। चार मंगल हैं-अरिहंत

मंगल है, सिद्ध मंगल है, साधु मंगल है और केवलि (तीर्थङ्कर) प्रणीत धर्म मंगल है।

चार लोक में उत्तम है—अरिहन्त उत्तम है, सिद्ध उत्तम है, साधु उत्तम है और केवली प्रणीत (तीर्थंकर कथित) धर्म उत्तम है।

मैं चार के शरण जाता हूँ। अरिहन्तों के शरण जाता हूँ। सिद्धों के शरण जाता हूँ। साधुओं के शरण जाता हूँ। केवलि-प्रणीत धर्म के शरण जाता हूँ।

भावार्थ—उपरोक्त मंगल पाठ में अरिहन्त और सिद्ध का स्वरूप तो ऊपर लिख ही दिया है। साधु का वाच्य यहां आचार्य उपाध्याय साधु है। मुनि त्रय, स्वरूप कहा धर्म का वाच्य है मोक्षमार्ग-रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र इसके दो स्थूलतर भेद हैं निश्चय और व्यवहार।

अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद्

का

कार्य विवरण एक दृष्टि मे

१ समाज द्वारा विद्वानों को मांग पर विद्वानों को भेजा पर्वों आदि पर।
२ मई १९६५ से मार्च ६८ तक ३० पुस्तकें छपकर बांटी (समस्त भारत में)
३ पोस्टर आदि समय समय पर निकाले।
४ हस्तिनापुर पर प्रचार कक्ष २ बार लगाया।
५ शिक्षा संस्थाओं को उनके अनुरूप पुस्तकें भेजी।
६ स्वाध्याय का प्रचार बढ़ाया।
७ शास्त्री परिषद् के शंका समाधान विभाग ने नये पथ को बढ़ने से रोका और उच्च समाधान जनता के सामने उपस्थित किया।
८ श्री सम्मेद शिखर व भगवी पार्श्वनाथ व भगवान पार्श्वनाथ जी के केस में सहयोग दिया।
९ मरिता पत्र द्वारा मुनि निन्दा करने पर उसका का उत्तर दिया गया
१० रेडियो पर जैन भजनों का प्रचार प्रारम्भ कराया (प्रात स्मरण)।
११ पूज्य गुरु गोपाल दास जन्म शताब्दि में सहयोग की प्रेरणा और आर्थिक सहयोग दिलवाया।
१२ श्रवण बेलगुल पर चढ़ने वाले ५० पैसे टक्स का विरोध तथा शेडों का विश्राम कराया व २५ पैसे पहाड पर चढने का विरोध किया
१३ समय समय पर समाज को विशेष जानकारी धार्मिक कार्यों की देती रही।
१४ विद्वानों की मांगों को पूर्ण कराया गया।
१५ मुक्तागिरि व श्रवण बेलगुल में नैमित्तिक अधिवेशन किये गये।
१६ विद्वानों के लिये उच्च अध्ययन का प्रबन्ध कराया व नौकरियां दिलाई।